THE TIMES OF INDIA

Date:18-04-24

Trust Is Key

As SC *again* hears petitions on poll process, EC should consider increasing VVPAT verification

TOI Editorials

Supreme Court is back to dealing with the tricky issue of trust in the integrity of India's election process. It's an important issue, but one where the apex court's repeated interventions have failed to quell doubts. We are now in the midst of one more attempt.

EVMs to stay | EVMs were introduced for 2004 Lok Sabha elections. Govts have come and gone since, and in general EVMs are seen as an improvement over paper ballots. Therefore, SC did well to quash the idea calling for a return to ballots.

VVPAT comes in | A voter verified paper audit trail is connected to an EVM device. It allows a voter a chance to verify that the choice is captured accurately and also creates a paper trail to resolve any subsequent dispute. It was SC in 2013 (Subramanian Swamy vs UOI) that ordered the introduction of VVPAT. Its logic was that it's an essential part of the election process.

This intervention was meant to get adequate buy-in of the electorate in the integrity of elections. However, till this day it's an issue that hasn't been laid to rest. It can't be ignored as an electorate's trust in an election's integrity is what holds up democracy.

2019 intervention | Ahead of 2019 LS elections, SC took an extra step (N Chandrababu Naidu vs UOI). In response to a petition seeking verification of 50% of VVPAT slips in each constituency, EC put out a statistical reason to oppose it. Indian Statistical Institute had told EC that 479 randomly picked EVMs for VVPAT verifications would generate results with over 99% accuracy. EC said it was already verifying eight times the number. Once again, to buy-in electorate trust, SC ordered a fivefold increase in VVPAT verification.

Time's not the issue | Any increase in VVPAT verification will delay results, said EC in court. But time's not anymore a relevant issue. To illustrate, in 2004, LS polls along with that of four state assemblies were completed in a little over three weeks. This year, the polls will take a little over six weeks.

US has been a deeply divided society after the breakdown of trust over election results in 2020. India shouldn't go that way. But having introduced VVPATs to quell doubts in 2013, we remain unsure of the adequate level of verification needed. EC should consider increasing VVPAT verification.

THE ECONOMIC TIMES

Date:18-04-24

Ease Casting Votes for Displaced, Migrants

ET Editorials

On Monday, Supreme Court rejected a plea seeking voting facilities for 18,000 people displaced due to ethnic strife in Manipur. It stated that its interference, particularly at this late stage, would create problems for the polling process. The internally-displaced people (IDPs) wanted the court to direct EC to set up booths at their current locations outside Manipur.

To be sure, EC will set up booths at relief camps within Manipur. But thousands — there are no official figures for IDPs in India — are forced to move out of their homes due to political violence, infrastructure projects and climate change.

Along with IDPs, economic migrants miss out on voting rights. For most of them, going back to their home constituencies to vote would mean losing wages, as well as incurring additional costs of travelling. In 2019, 300 mn people — twice Russia's population — didn't get to vote.

EC also acknowledges that internal migration is a prominent reason for low voter turnout. In 2023, EC sought a discussion from political parties on the multi-constituency remote electronic voting machine prototype, which would streamline voting for economic migrants. But, in 2023, GoI said there was no proposal to introduce remote voting yet.

In some cases, the poll panel has made welcome relaxations. Recently, it eased paperwork for people who shifted from Kashmir to Jammu and Udhampur in the 1990s to cast their votes, facilitating their participation.

India is justifiably proud of its elections. It would be much better if thousands were not left out of the process not because of unwillingness to participate, but because of political circumstances and economic compulsions. If there's a will, there'll be a way to bring more under the poll umbrella.

दैनिक जागरण

Date:18-04-24

शिक्षा पर और अधिक खर्च आवश्यक है

डॉ ब्रजेश कुमार तिवारी, (लेखक जेएनयू के अटल स्कूल आफ मैनेजमेंट में प्रोफेसर हैं)

लंदन की उच्च शिक्षा विश्लेषण कंपनी क्वाक्वेरेली साइमंड्स यानी क्यूएस की ओर से जारी ताजा विश्व रैंकिंग में 59 भारतीय उच्च शिक्षण संस्थानों ने जगह बनाई है। दुनिया के उत्कृष्ट संस्थानों में जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय यानी जेएनयू को 20वां स्थान दिया गया है। इसे देश का सर्वश्रेष्ठ विश्वविद्यालय आंका गया है। वहीं आइआइएम-अहमदाबाद व्यवसाय एवं प्रबंधन अध्ययन की श्रेणी में विश्व के शीर्ष 25 संस्थानों में से एक है। इसी तरह आइआइटी-मद्रास, दिल्ली और मुंबई ने भी दुनिया के 50 शीर्ष संस्थानों में जगह बनाई है।

जेएनयू लंबे समय से देश के सबसे प्रतिष्ठित विश्वविद्यालयों में से रहा है। 1969 में स्थापना के वर्ष से ही यह सदैव उत्कृष्टता, रचनात्मकता और बौद्धिकता की अनवरत तलाश में रहा है। विचारों की दुनिया में जेएनयू का विशेष स्थान है। इसमें भारत और विश्व स्तर पर क्या हो रहा है, इसके बारे में खुलकर विचार रखे जाते हैं। जेएनयू ने गरीब परिवारों से आने वाले छात्रों के लिए भी गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्राप्त करना संभव बनाया है।

इसीलिए इसे देश का सबसे सस्ता विश्वविद्यालय भी कहा जाता है। भारतीय ज्ञान परंपरा को बढ़ावा देने के लिए इसने हाल में भारतीय भाषा केंद्र की शुरुआत की है। जेएनयू में सामाजिक विज्ञान, आधुनिक विज्ञान के साथ ही बदलते समय में आयुर्वेद एवं परंपरागत संगीत, आधुनिक चिकित्सा, मैनेजमेंट और इंजीनियरिंग की पढ़ाई भी शुरू की जा चुकी है। मंत्री, नोबेल विजेता और चर्चित नौकरशाह देने का श्रेय भी जेएनयू को है।

क्यूएस रैंकिंग के अनुसार भारत दुनिया में सबसे तेजी से शोध केंद्रों का विस्तार करने वाले देशों में से भी एक है। वर्ष 2017 से 2022 के बीच देश में शोध कार्यों में 54 प्रतिशत तक की वृद्धि हुई है, जो न केवल वैश्विक औसत के दोगुने से अधिक है, बल्कि पश्चिमी समकक्षों से भी काफी आगे है। इसके चलते भारत अब शोध क्षेत्र में दुनिया का चौथा सबसे बड़ा देश बन गया है और इस अवधि में 13 लाख अकादमिक शोध पत्र तैयार किए गए हैं। मौजूदा गति को देखते हुए भारत शोध उत्पादकता में ब्रिटेन को पीछे छोड़ने के करीब है। यह भारतीय शिक्षा जगत के लिए एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है।

साथ ही वैश्विक शिक्षा परिदृश्य में भारत की बढ़ती प्रमुखता को भी दर्शाता है। आज इजरायल ने भी यह दिखा दिया है कि एक छोटा राष्ट्र होने के बावजूद अनुसंधान एवं विकास में निवेश को प्राथमिकता देकर सतत विकास हासिल किया जा सकता है। एक मजबूत अर्थव्यवस्था बनने के लिए देश के पास दीर्घकालिक और सार्थक स्तर पर ज्ञान प्रणाली की आवश्यकता होती है, जो उसे शक्ति प्रदान करती है। देश में जितनी बौद्धिक संपदा सृजित होगी, उतने ही बड़े पैमाने पर रोजगार भी सृजित होंगे। जो राष्ट्र अनुसंधान एवं विकास में निवेश करने में विफल रहता है, वह आर्थिक अस्थिरता में फंसता रहता है।

अनुसंधान एवं विकास ही बेहतर जीवन के द्वार खोलता है। इसे देखते हुए भारत में पिछले साल राष्ट्रीय अनुसंधान फाउंडेशन का गठन हुआ था। देश में प्रतिभा की कोई कमी नहीं है। दुनिया की सबसे पुरानी सभ्यताओं में से एक भारतीय सभ्यता एवं भारतीय ज्ञान परंपरा ने प्राचीन समय से विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी को एक मजबूत आधार दिया है। आर्यभट्ट और श्रीनिवासन रामानुजन जैसे प्रतिभाशाली लोगों ने पूरे संसार को एक नई राह दिखाई। सवाल यह उठता है कि शोध की इतनी योग्यता रखने वाला देश इतने कम घरेलू नवप्रवर्तन क्यों पैदा करता है? शायद इसका उत्तर यही है कि हमने अनुसंधान एवं विकास पर उतना ध्यान नहीं दिया, जितना अन्य देशों ने दिया।

जहां चीन, जापान और दक्षिण कोरिया जैसे देशों ने शिक्षा पर बहुत अधिक खर्च किया, वहीं हम आज तक उचित बजट की बाट जोह रहे हैं। अनुसंधान एवं विकास पर भारत का खर्च सकल घरेलू उत्पाद का लगभग 0.6 प्रतिशत है और विश्व औसत 1.8 प्रतिशत से काफी नीचे है। इसमें निजी क्षेत्र का योगदान उनके सकल व्यय का 40 प्रतिशत से कम है, जबकि उन्नत देशों में यह आंकड़ा 75 प्रतिशत से अधिक है। यह अच्छी बात है कि केंद्र सरकार इससे उबरने के लिए नवीन पहल कर रही है।

डिजिटल विश्वविद्यालय और गति शक्ति विश्वविद्यालय ज्ञान आधारित अर्थव्यवस्था की रीढ़ बनने जा रहे हैं। इन नए प्रयासों के चलते ही विश्व बौद्धिक संपदा संगठन द्वारा जारी ग्लोबल इनोवेशन इंडेक्स, 2023 में भारत 132 देशों की सूची में 40वें स्थान पर आया है। 2015 में यह 81वें स्थान पर था, जो एक बड़ा सुधार है। इन उपलब्धियों के साथ ही देश की शिक्षा के समक्ष कुछ अन्य चुनौतियां भी हैं, जिनका समाधान किया जाना समय की मांग है।

उच्च शिक्षा तक सभी की पहुंच, वैश्विक प्रतिस्पर्धात्मकता और मानकों में सुधार के लिए अब भी बहुत कुछ किया जाना बाकी है। भारत ने 2035 तक 50 प्रतिशत सकल नामांकन अनुपात का महत्वाकांक्षी लक्ष्य निर्धारित किया है। इसके लिए जरूरी है कि उच्च शिक्षा में फेलोशिप बढ़ाई जाएं, छात्रों को सस्ती दर पर एजुकेशन लोन की व्यवस्था की जाए और कौशल आधारित पाठ्यक्रमों में सब्सिडी दी जाए, जिससे यह विश्व रैंकिंग लगातार बढ़ती रहे।

इसके अलावा रेवड़ी के दायरे में आने वाली विभिन्न योजनाओं का पैसा भी शिक्षा क्षेत्र में लगाना समय की मांग है। भारत के पास नवाचार का वैश्विक चालक बनने के लिए आवश्यक सभी सामग्रियां, एक मजबूत बाजार क्षमता, असाधारण प्रतिभाएं और मितव्ययी नवाचार की एक संपन्न संस्कृति है। जरूरत है तो उचित बजट एवं प्रतिभाओं के सही मार्गदर्शन की। यह काम शिक्षा पर अपेक्षित बजट खर्च करके ही किया जा सकता है।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date:18-04-24

जलवायु परिवर्तन पर न्यायिक सक्रियता

कनिका दत्ता

राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र में हाल में तापमान 38 डिग्री सेंटीग्रेड तक हो गया जिससे यह चेतावनी मिल रही है कि इस साल अच्छी गर्मियां पड़ने वाली हैं। ऐसे में दो न्यायिक फैसले जलवायु परिवर्तन को लेकर नया दृष्टिकोण देते हैं।

देश के सर्वोच्च न्यायालय ने 21 मार्च के एक आदेश का विस्तृत निर्णय अपलोड कर दिया है। इसमें पहली बार जलवायु परिवर्तन के विपरीत प्रभाव से बचाव को एक विशिष्ट अधिकार बताया गया है। मुख्य न्यायाधीश डीवाई चंद्रचूड़ की अध्यक्षता वाले तीन सदस्यीय पीठ ने कहा कि विधि के समक्ष

समता और समान संरक्षण से संबंधित अनुच्छेद 14 तथा जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता से संबंधित अनुच्छेद 21 इस अधिकार का अहम स्रोत हैं।

यहां से करीब 6,000 किलोमीटर दूर स्ट्रासबर्ग में यूरोपीय मानवाधिकार अदालत ने 2,000 से अधिक स्विस महिलाओं के एक समूह द्वारा दायर याचिका पर निर्णय दिया। ये सभी महिलाएं वरिष्ठ नागरिक थीं। यह फैसला जलवायु परिवर्तन को मानवाधिकार से जोड़ने के मामले में एक वैश्विक नजीर पेश करता हुआ प्रतीत होता है। न्यायालय ने अपने निर्णय में कहा कि स्विस सरकार जलवायु परिवर्तन से निपटने के लिए पर्याप्त कदम उठाने में नाकाम रही है और इस प्रकार उसने अपने नागरिकों के मानवाधिकारों का हनन किया है। जलवायु से जुड़े कदमों को लेकर दिए गए इस निर्णय के खिलाफ अपील नहीं की जा सकती है।

दोनों निर्णयों में समानता नजर आती है लेकिन यह समानता सतही है। सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय एक वाणिज्यिक पहलू का समाधान करता है। यह मामला राजस्थान और गुजरात में ग्रेट इंडियन बस्टर्ड (एक विशालकाय पक्षी जिसे जीआईबी कहा जाता है) के संरक्षण और सौर ऊर्जा डेवलपरों के ओवरहेड ट्रांसमिशन लाइन बिछाने के अधिकार से संबंधित था।

ताजा निर्णय जीवाश्म ईंधन के बजाय लोगों के स्वच्छ ऊर्जा के अधिकार को रेखांकित करता है और सर्वोच्च न्यायालय के 2021 के एक निर्णय को पलटता है जिसमें कहा गया था कि सभी ओवरहेड (ऊपर से गुजरने वाली) ज्यादा और कम वोल्टेज वाली बिजली की लाइनों को भूमिगत किया जाए ताकि उस क्षेत्र में उड़ने वाले जीआईबी प्रभावित न हों।

सरकार की अपील पर सर्वोच्च न्यायालय ने एक विशेषज्ञ समिति का गठन किया। वास्तविकता यह है कि बिजली की लाइन को जमीन के नीचे से ले जाने से सौर डेवलपरों की लागत बढ़ जाती। गत वर्ष विशेषज्ञ समिति ने कहा कि डेवलपरों को इन पक्षियों की बसाहट वाले इलाकों में चिड़ियों को भगाने वाले या एलईडी आधारित चेतावनी वाली डिस्क लगानी चाहिए।

यद्यपि यह कम लागत वाला उपाय है लेकिन इनकी स्थापना के लिए मंजूरी हासिल करने में दिक्कत हो सकती है और इन उपकरणों के लिए सक्षम विक्रेताओं की भी कमी हो सकती है। गत वर्ष नवंबर में नवीन और नवीकरणीय ऊर्जा मंत्रालय ने एक आवेदन किया कि सौर ऊर्जा की लाइन को अनिवार्य तौर पर भूमिगत करने की व्यवस्था से देश का कार्बन उत्सर्जन प्रभावित होगा।

इस तर्क में दम है लेकिन उन पक्षियों का क्या जो एक संरक्षित प्रजाति से हैं? यह कहा जा सकता है कि चूंकि खुले वनों में केवल 200 जीआईबी बचे हैं इसलिए उन्हें संरक्षित करने का प्रयास नहीं किया जाना चाहिए। परंतु कल्पना कीजिए कि अगर प्रोजेक्ट टाइगर के पहले जब केवल 2,000 बाघ बचे थे, तब भी यही दलील दी जाती तो क्या होता?

यहां अगर वैश्विक तापवृद्धि का व्यापक प्रश्न सामने रखें तो किसी भी प्रजाति का विलुप्त होना पर्यावरण के संतुलन को बिगाड़ता है और इसके ऐसे नुकसानदेह परिणाम हो सकते हैं जो अभी नजर नहीं आ रहे हैं। मलेरिया, चिकनगुनिया और डेंगू के मामले इसलिए बढ़े कि छिपकलियों और चिड़ियों की आबादी कम होने से मच्छर बढ़े जिन्हें वे खाती हैं। इसकी वजह से हमें अधिक नुकसानदेह रासायनिक पदार्थों की मदद से मच्छर भगाने पड़ते हैं। इससे वैश्विक ताप बजट में भी इजाफा होता है।

पर्यावरण से जुड़ा कोई भी उपाय अपने आप में संपूर्ण नहीं होता है लेकिन सरकार जोखिम को संतुलित कर सकती है। हम प्रोजेक्ट टाइगर की उपलब्धियों पर गर्व करते हैं लेकिन इसके कारण आबादी का जो विस्थापन हुआ उस पर ध्यान नहीं देते। कुछ वन्य जीव अभयारण्य मसलन कान्हा और कॉर्बेट में जमीन गंवाने वाले स्थानीय लोगों को गाइड या ट्रैकर के रूप में प्रशिक्षित किया जाता है। सौर ऊर्जा डेवलपरों की दुविधा से कोई नया हल निकाला जा सकता था जहां सरकार व्यय में साझेदारी करती और स्वच्छ ऊर्जा तथा पक्षियों के संरक्षण के रूप में दोनों काम हो जाते।

प्रश्न यह है कि सबसे बड़ी अदालत का ताजा निर्णय जो संवैधानिक मूल्यों के साथ विकास के मुद्दे को रेखांकित करता है, वह जलवायु न्याय तक नागरिकों की पहुंच में कितना इजाफा करेगा? यह निर्णय 1980 के दशक के न्यायशास्त्र पर आधारित है। एमसी मेहता बनाम भारत सरकार का प्रसिद्ध मामला भी इसका हिस्सा है जिसके तहत कहा गया था कि प्रदूषण रहित माहौल में जीवन बिताना अनुच्छेद 21 के तहत मूल अधिकारों का हिस्सा है। इसके बावजूद भारत के शहर दुनिया के सबसे प्रदूषित शहरों की सूची में प्रमुखता से नजर आते हैं। यह निर्णय ये सवाल भी खड़ा करता है कि सरकार बढ़ती गर्मी और ग्लेशियर पिघलने के कारण आने वाली बाढ़ से होने वाली मौतों को कैसे रोकेगी। यह वैश्विक तापवृद्धि का सबसे अहम संकेत है।

ग्लेशियरों का पिघलना ही वह वजह थी जिससे स्विस महिलाओं के समूह ने मानवाधिकार न्यायालय का रुख किया था। उनका कहना था कि स्विस सरकार ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन कम करने में कामयाब नहीं रही। वहां की सरकार ने कहा था कि वह 2030 तक उत्सर्जन को 1990 के स्तर के 50 फीसदी तक कम करेगी लेकिन जनमतसंग्रह करके कड़े उपायों को नकार दिया गया। यह मामला गत गर्मियों में लगे जलवायु लॉकडाउन की वजह से अदालत में गया क्योंकि इससे कई बुजुर्ग महिलाओं को घरों में कैद रहना पड़ा।

इस फैसले का वास्तविक असर स्पष्ट नहीं है। कुछ टीकाकारों का मानना है कि इसके बाद राष्ट्रीय अदालतों में वाद और वित्तीय जुर्माना लग सकता है। इसे ऑस्ट्रेलिया, ब्राजील, पेरू और दक्षिण कोरिया जैसे देशों के लिए एक चेतावनी की तरह देखा जा रहा है। नॉर्वे में तेल और गैस खनन अधिकारों को लेकर एक मुकदमा चल रहा है।

दिलचस्प बात है कि स्ट्रासबर्ग की अदालत ने छह पुर्तगाली युवाओं द्वारा 32 यूरोपीय सरकारों के खिलाफ लाए गए मामले को यह कहते हुए खारिज कर दिया कि सरकारों का कार्बन उत्सर्जन देशों की सीमाओं के परे लोगों को प्रभावित कर सकता है लेकिन इसके चलते कई जगहों पर मुकदमा नहीं चलाया जा सकता है। न्यायालय सही हो सकता है लेकिन युवाओं ने मुद्दे की सही पहचान की।

जलवायु परिवर्तन संबंधी कदम केवल किसी एक देश की चिंता का विषय नहीं हो सकते, इनके लिए वैश्विक सहयोग और कदमों की जरूरत है। जैसा कि ये फैसले बताते हैं जलवायु परिवर्तन के मामले में कीमत युवाओं, बुजुर्गों, महिलाओं, बेजुबानों और जीव-जंतुओं को चुकानी पड़ रही है।

जनसत्ता

Date:18-04-24

नक्सली चुनौती

संपादकीय

छत्तीसगढ़ के कांकर में सुरक्षाबलों ने मुठभेड़ में उनतीस नक्सलियों को मार गिराया निस्संदेह यह बड़ी कामयाबी है। इस वर्ष इस घटना सहित अब तक करीब अस्सी नक्सली मारे जा चुके हैं। सरकार का कहना है कि छत्तीसगढ़ में नक्सली कुछ इलाकों तक सिमट कर रह गए हैं। जल्दी ही उन पर पूरी तरह नकेल कसी जा सकेगी केंद्र और राज्य सरकारें ऐसे दावे बहुत समय से करती आ रही हैं, मगर हकीकत यह है कि अनेक उपायों, रणनीतियों और प्रयासों के बावजूद वहां माओवादी हिंसा पर काबू पाना कठिन बना हुआ है। थोड़े-थोड़े समय पर नक्सली सक्रिय हो उठते और घात लगा कर सुरक्षाबलों पर हमला कर देते हैं। अगर सचमुच नक्सलियों को कुछ इलाकों तक समेट दिया गया होता और उनके संगठन कमजोर हो गए होते, तो उनके पास अत्याधुनिक हथियारों की पहुंच संभव न होती, सुरक्षाबलों की गतिविधियों पर नजर रखने के लिए उनके पास कारगर संचार प्रणाली न होती छत्तीसगढ़ में करीब चालीस वर्ष से माओवादी हिंसा का दौर चल रहा है। इस बीच अनेक रणनीतियां अपनाई गई, मगर वे कारगर नहीं हो पाई हैं। चुनाव के माहौल में सुरक्षाबलों की ताजा कामयाबी से नक्सली उपद्रवियों का मनोबल जरूर कमजोर होगा, पर इस समस्या को जड़ से समाप्त करने के लिए व्यावहारिक कदम की अपेक्षा अब भी बनी हुई है।

दरअसल, आदिवासी इलाकों में माओवादी हिंसा की कई परतें है। आदिवासियों को लगता है कि सरकार उनके जंगल और जमीन छीन कर उद्योगपतियों को सौंप देना चाहती है। वे इसका विरोध करते रहे हैं। शुरू में इस मसले को बातचीत के जरिए सुलझाने की कोशिश की गई, मगर वह किसी नतीजे पर नहीं पहुंच सकी। फिर बंदूक के जरिए उन पर काबू पाने का प्रयास किया जाने लगा। फिर आदिवासियों और समर्पण करने वाले नक्सलियों को ही बंदूक देकर नक्सली संगठनों के खिलाफ खड़ा करने की रणनीति अपनाई गई। उसमें काफी खून-खराबा हुआ, मगर नक्सली समस्या को समाप्त कर पाना संभव न हो सका। हेलीकाप्टर, ड्रोन और अत्याधुनिक संचार तकनीकी के जरिए उनकी गतिविधियों पर नजर रखी जाने लगी, पर उसमें भी बहुत कामयाबी नहीं मिल सकी। नक्सली कई मौकों पर सुरक्षाबलों को अपने जाल में फंसा कर हमला करते भी देखे जा चुके हैं। दो साल पहले इसी तरह उन्होंने बीजापुर में बाईस सुरक्षाबलों को मार गिराया था। नक्सली समस्या से पार पाने के लिए दो तरह के विचार काम करते रहे हैं, जिसमें आदिवासियों को मुख्यधारा से जोड़ने के लिए उनके इलाकों में विकास कार्यक्रमों पर बल देने की सिफारिश की जाती रही है। इसके तहत पिछली सरकार ने कई योजनाएं भी चलाई थी, ताकि उनकी आर्थिक स्थिति सुदृढ़ हो सके। दूसरा विचार बंदूक के बल पर नक्सलियों के सफाए का रहा है। मगर हकीकत यह है कि उनसे निपटने के लिए कोई व्यावहारिक नीति आज तक नहीं बन सकी है। हजारों निरपराध आदिवासी जेलों में बंद हैं, उनकी रिहाई के बारे में कोई कदम नहीं उठाया जा सका है। पांच-छह साल पहले एक नीति बनाने पर जरूर जोर दिया गया था, जिसमें उनसे बातचीत का प्रस्ताव भी था, मगर वह नीति बन नहीं सकी सबसे जरूरी है, स्थानीय आदिवासियों में यह भरोसा पैदा करना कि सरकार उनके जीवन में बेहतरी के लिए

प्रतिबद्ध है। उनके जल, जंगल, जमीन के मसले पर संजीदगी से बात हो, तो शायद वे हिंसा का रास्ता छोड़ने को तैयार हो जाएं।